अन्तर्राष्ट्रीय वेदान्त मिशन की मासिक ई – पत्रिका

वेदान्त पीयूष

वर्ष २१ जुलाई – २०२१ प्रकाशन – ०७

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

जुलाई २०२१

प्रकाशक

आन्तराष्ट्रिय वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ
सदाशिवसमारम्भाम्
शंकराचार्य मध्यमाम्
अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्
वन्दे गुरु परम्पराम्

वेदान्त पीयूष

विषय सूचि

1,	श्लोक	07
2.	पू. गुरुजी का संदेश	08
3.	वेदान्त लेख	14
4.	दृग्दृश्य विवेक	24
5.	गीता चिन्तन	32
5.	श्री लक्ष्मण चरित्र	52
6.	जीवन्मुक्त	58
7.	कथा	64
8.	मिशन-आश्रम समाचार	70
9.	इण्टरनेट समाचार	84
10	आगामी कार्यक्रम	85
11	लिन्क	86

जुलाई 2021

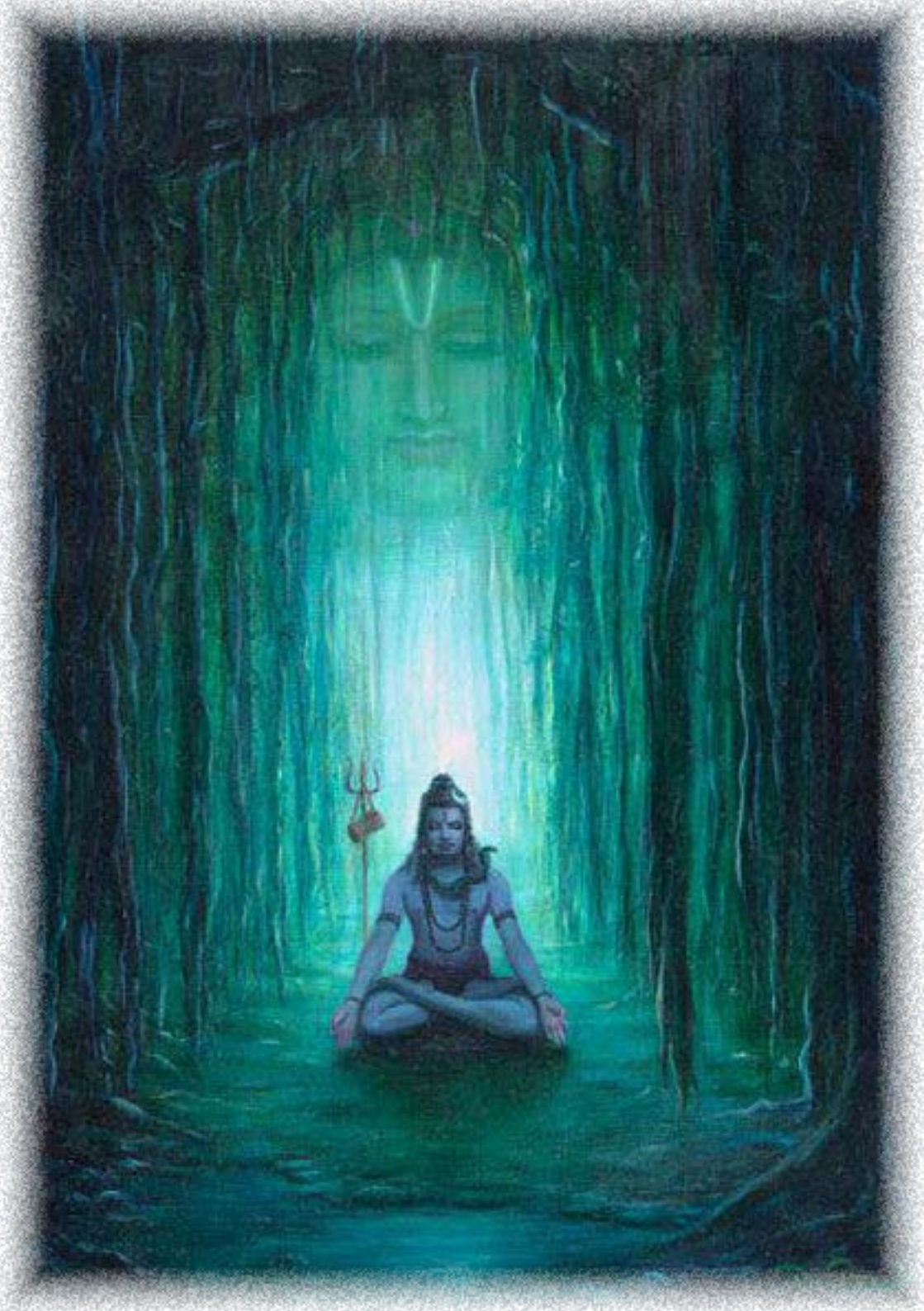

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुर साधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः॥

(शिवमहिम्नः स्तोत्रम्)

हे ईश्वर! जो कामदेव देवता, असुर, मनुष्य आदि पर सदैव विजयी रहे, उनके बाण कभी भी लक्ष्य का भेदन किए बगैर वापिस नहीं लौटे है। उन कामदेव ने आपको अन्य देवताओं की तरह एक साधारण देव समझा; परिणाम स्वरूप वह स्मरण मात्र के लिए शेष रह गया। यह सर्वथा सत्य है कि आप जैसे जितेन्द्रिय का अनादर करना सदैव अहितकर होता है।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

ईश्वरभक्ति से पात्रता

ब्रह्मस्वरूपता में जगने के लिए वेदान्त का ज्ञान ही एक मात्र प्रमाण है। हमारा लक्ष्य वेदान्त की दृष्टि को आत्मसात करके उसे अपरोक्षतः देखना है। इसकी पात्रता के लिए ईश्वर के प्रति भक्ति ही साधन है। भक्ति से ईश्वरविषयक जिज्ञासा जगती है, और उनके ज्ञान की गहराई में जाने की प्रेरणा होती है।

सत्संग में सन्त, गुरु महात्मादि के द्वारा पहले ईश्वर के प्रति भक्ति जगाई जाती

ईश्वरभक्ति से पावनता

है। ईश्वर परोक्षज्ञान का विषय होने से श्रद्धा से ग्रहण किया जाता है। जिस धरातल पर हम होते हैं, उस धरातल से ईश्वर को ग्रहण करते हैं और प्रभावित होते हैं। प्रारम्भ में स्थूल धरातल पर खडे होने से ईश्वर की अभिव्यक्तियों से प्रभावित होते हैं। उनका अपने जीवन में योगदान देखते हैं कि वे हमें इष्टफल देने के द्वारा हमारी मनोकामना पूर्ण करते हैं।

'ईश्वरभक्ति का महानतम प्रसाद उनकी महिमा के आधारभूत ज्ञान की जिज्ञासा का उदय है।'

इससे शनैः शनैः मन हल्का व निश्चिंत होने लगता है। सूक्ष्म चिन्तन का सामर्थ्य, विचारशीलता आदि बढ़ते जाते हैं, तब गुरु के द्वारा उनके सृष्टृत्व, नियन्तृत्व, ऐश्वर्य, सामर्थ्यादि गुणों का भान कराए

ईश्वरभक्ति से पावनता

जाने पर उससे प्रभावित व रोमांचित होकर भक्ति से युक्त होते जाते है। उनकी प्रत्येक लीला, गुण आदि चिन्तन का विषय बनता है।

'ईश्वर के ईश्वरत्व, महिमा, सुन्दरता का आधार उनका अपने बारे में ज्ञान है।'

जैसे जैसे चिन्तन होता जाता है, वैसे वैसे उनके प्रति श्रद्धा, भक्ति, आदरादि और भी बढ़ते जाते है। जब तक उनके गुण, लीला आदि हमें रोमांचित नहीं करते है, तब तक भक्ति की सार्थकता नहीं होती है। गुणों के चिन्तन से ही गुणों के हेतुरूप ज्ञान की जिज्ञासा होने लगती है। जब ईश्वर के ज्ञान के लिए खुले मन से युक्त होते है, तब जीवन में मूलभूत

ईश्वरभक्ति से पावनता

परिवर्तन होने लगता है, व शास्त्र का महत्व होता है। क्योंकि शास्त्र ईश्वर की वाणी है। समस्त सन्त, आचार्य ईश्वर का ही ज्ञान देते है। ईश्वरभक्ति से मन में सात्विकता, सूक्ष्मता, विचारशीलतादि आते है और उनके सूक्ष्म रहस्य की जिज्ञासा होती है। यही भक्ति का प्रसाद है। इस प्रकार ईश्वरभक्ति से ईश्वर के ज्ञान तक पहुंचते है।

'ईश्वर के ज्ञान का महत्व स्थापित होने का प्रतिफल गुरुभक्ति है।'

धूपमें निकलों,
घटाओंमें भीगकर देखों,
जिन्दगी खुबसूरत है।

किताबको हटाकर देखों।
इन आंखों से नहीं दीख सकेगी दुनिया,
दिलकी धडकन लगाकर देखों।
जिन्दगी खुबसूरत है,
खुदीको मिटाकर देखों।

वेदान्त लेख
अहम् ब्रह्मास्मि

अखण्डाकार वृत्ति

अखण्डाकार वृत्ति

वेदान्त का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके उसके अर्थ को स्वयं अपरोक्षतः देखने में ही ज्ञान का पर्यवसान होता है। वेदान्तज्ञान की प्राप्ति हेतु विशेष पात्रता अर्थात् योगयुक्त, तीव्र जिज्ञासु होना चाहिए। कर्मक्षेत्र में योग से युक्त होते हैं; जहां प्रत्येक द्वन्द्व में, हर परिस्थिति को भोगवृत्ति से रहित विचारशीलता से युक्त समझने का प्रयास होता है। ऐसा

'योगयुक्तः मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।'

अखण्डाकार वृत्ति

योगयुक्त जिज्ञासु वेदान्त का ज्ञान प्राप्त करके उसका अपरोक्षतः अनुभव कर लेता है।

'अखण्डाकार वृत्ति में अपनी चेतन स्वरूपता का संज्ञान होना वृत्तिव्याप्ति है।'

अखण्डाकार वृत्तिः इस विषय में एक स्वाभाविक प्रश्न होता है कि, ज्ञान जब जीव ही प्राप्त करता है, तो इस प्रक्रिया में विचारक व ज्ञाता जीव तो बना ही रहेगा। अतः जीव से ब्रह्मस्वरूपता में जाग्रति कैसे होगी! उसका रहस्य अखण्डाकार वृत्ति में होता है। उसके लिए एक क्रम होता है जिसमें पहले तत् और त्वं पद के शब्दार्थ को देखते हैं। जहां अपनी तथा ईश्वर की दृष्ट अभिव्यक्ति को देखते हैं। उनके साथ अंश-अंशी सम्बन्ध देखते हैं। हम एक जीव की विनम्रता से युक्त

अखण्डाकार वृत्ति

होकर ईश्वर को जगन्नियन्ता, सृष्टादिरूप, महिमावान देखते हैं। उनके गुणगान गाते हुए, सतत भक्ति से युक्त होकर जीते हैं, तब ओर सूक्ष्मज्ञान की जिज्ञासा से युक्त, पात्र बनता है ओर यह ज्ञात होता है कि जीव-ईश्वर का रहस्य और भी सूक्ष्म है।

'लौकिक विषयक ज्ञान में पहले वृत्तिव्याप्ति होकर फिर फलव्याप्ति होती है।

जीव-ईश्वर उन दोनों का रहस्य शास्त्रप्रदत्त लक्षणा से लक्षितार्थ को समझने से उद्घाटित होता है। तब शब्दार्थ बाधित होकर उसका पर्यवसान असि अर्थात् एक अखण्ड चेतन सत्ता में होता है। अपनी अखण्डता की अवेरनेस हो जाना ही अखण्डाकार वृत्ति है।

अखण्डाकार वृत्ति

ज्ञान की प्रक्रिया: अखण्डाकार वृत्ति को समझने के लिए ज्ञान की प्रक्रिया समझनी चाहिए। कोई भी अनात्म विषय जड़ होने से वे अपना स्वत: भान नहीं कराते हैं। हम उसके कान्शियस होते हैं, तब हमारी चेतना उसे व्याप्त करती है व अज्ञान दूर होता है। इसे वृत्तिव्याप्ति कहते हैं। उसका भान होकर हम उसके ज्ञाता बनते हैं – यह फलव्याप्ति है। इस प्रकार अनात्मा में वृत्तिव्याप्ति और फलव्याप्ति होती है। उसमें हम ज्ञाता, संकुचित व विशिष्ट जीव बने रहते हैं। अत: स्वाभाविक रूप से असुरक्षा, पसंद-नापसंद, पराधीनता आदि बने रहते हैं। हमारा जीवभाव, संकुचिता ही वास्तविक बन्धन

'अपनी अखण्डता की अवेरनेस होना ही अखण्डाकार वृत्ति है।'

अखण्डाकार वृत्ति

हैं। अतः उसके रहस्य को जानना चाहते हैं। उसके लिए वेदान्त ही प्रमाण हैं।

'हं मारा जीवभाव ही बन्धन है।'

वेदान्त के अर्थ को अपरोक्षतः देख लेना ही मुक्ति है। यहां अनात्मा व आत्मा दोनों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। अनात्मा के ज्ञान की संसारीवृत्ति से विलक्षण, भोगवृत्ति से रहित, शाश्वत सत्य को जाननेमात्र की प्रेरणा है। सत्य की खोज के लिए भोग वा फलाकांक्षा रहित होना चाहिए। अनात्मा के ज्ञान से ईश्वर की महिमा का ज्ञान होता है, यह जीवभाव को ही शिथिल करता है। वेदान्तज्ञान के प्रसाद से अनामा को अनात्मा देखने से उसकी क्षणिकता, नश्वरतादि की अवेरनेस की वजह से उससे मोहित व प्रभावित नहीं होते हैं। तटस्थता आने लगती है। अनात्मा के

अखण्डाकार वृत्ति

ज्ञाता बनने से उसके तत्त्वविषयक ज्ञान के पात्र बनते है। अब जाननेवाले मैं को तथा अनात्मा को जो आत्मवान करता है, उस आत्मा को जानना है। उसके लिए एक मात्र शब्दप्रमाण ही है।

'वेदान्त ज्ञान दृष्टिमें तटस्थता लाता है।'

इसकी प्रामाणिकता लक्षणा होने के द्वारा होती है। वह सत्य को परिभाषित, वर्णित नहीं करते किन्तु शाखाचन्द्र न्यायवत् आत्मा को लक्षित करता है। अतः किसी वर्णन वा संकुचित करने के दोष से रहित होती है। इन लक्षणा के माध्यम से चेतना की ओर अपना ध्यान मोड़ा जाता है, हम उसके कान्शियस होते है; यह वृत्तिव्याप्ति है। अभी भी हम अर्थात् जीव ही कान्शियस हुआ है।

अखण्डाकार वृत्ति

इस जीव पर विचार करते है कि आत्मा की सच्चित्स्वरूपता व वृत्ति के संयोग से जानामि इति प्रवर्तते। जीव यही वृत्ति का परिणाम है। इस बिन्दु पर विचार करने पर दीखता है कि हममें जड और चेतन दोनों अंश है। हम जो ज्ञाता बने है, वह जड़ अंश, परिस्थिति सापेक्ष है। वेदान्त ज्ञान के द्वारा जड़ को जड़ जानने के द्वारा उपेक्षा कर देने से, उसे देखते ही देखते महत्वविहीन कर दिया। इस प्रकार जीव के जड़ काम्पोनण्ट बाधित होने पर अपने होने मात्र की ओर ध्यान देते है। हमारा होना मात्र जीवन्त सत्ता है। यह स्वतः रिविल हो रही है; उसे प्रकाशित नही करना पड़ता तथा न किसी पर आश्रित है। यह ही चिन्मयी सत्ता हम है।

'सत्य को परिभाषित नहीं किया जा सकता है, उसे लक्षित ही कर सकते है।'

अखण्डाकार वृत्ति

एवं इस प्रक्रिया में उपाधि का निषेध होकर चेतना की ओर ध्यान मोडता है, तब हम चेतनामात्र है। यही हमारी अस्मिता होती है; हम ज्ञातादि नहीं अर्थात् फलव्याप्ति नहीं। एवं वेदान्तप्रसाद से समस्त अनात्मा को अनात्मा जानने से उसका निषेध हुआ और आत्मा को आत्मा जाना तो जीवभाव की समाप्ति होकर हम अपनी अखण्ड चेतना, ब्रह्मस्वरूपता में जग गएं।

अखण्डाकार वृत्ति की यही विशेषता है कि दैविक जीव ही जानने हेतु प्रवृत्त किन्तु इस ज्ञान की प्रक्रिया में अपने समस्त ध र्मो का त्याग, निषेध हो जाता है। ज्ञातादि रूप, जीवभाव की समाप्ति होकर हम एक अखण्ड चेतनामात्र शेष रहते है। यही अपनी ब्रह्मस्वरूपता में जागति है।

'अनात्मा को अनात्मा जानने से ही उसका निषेध होता है।'

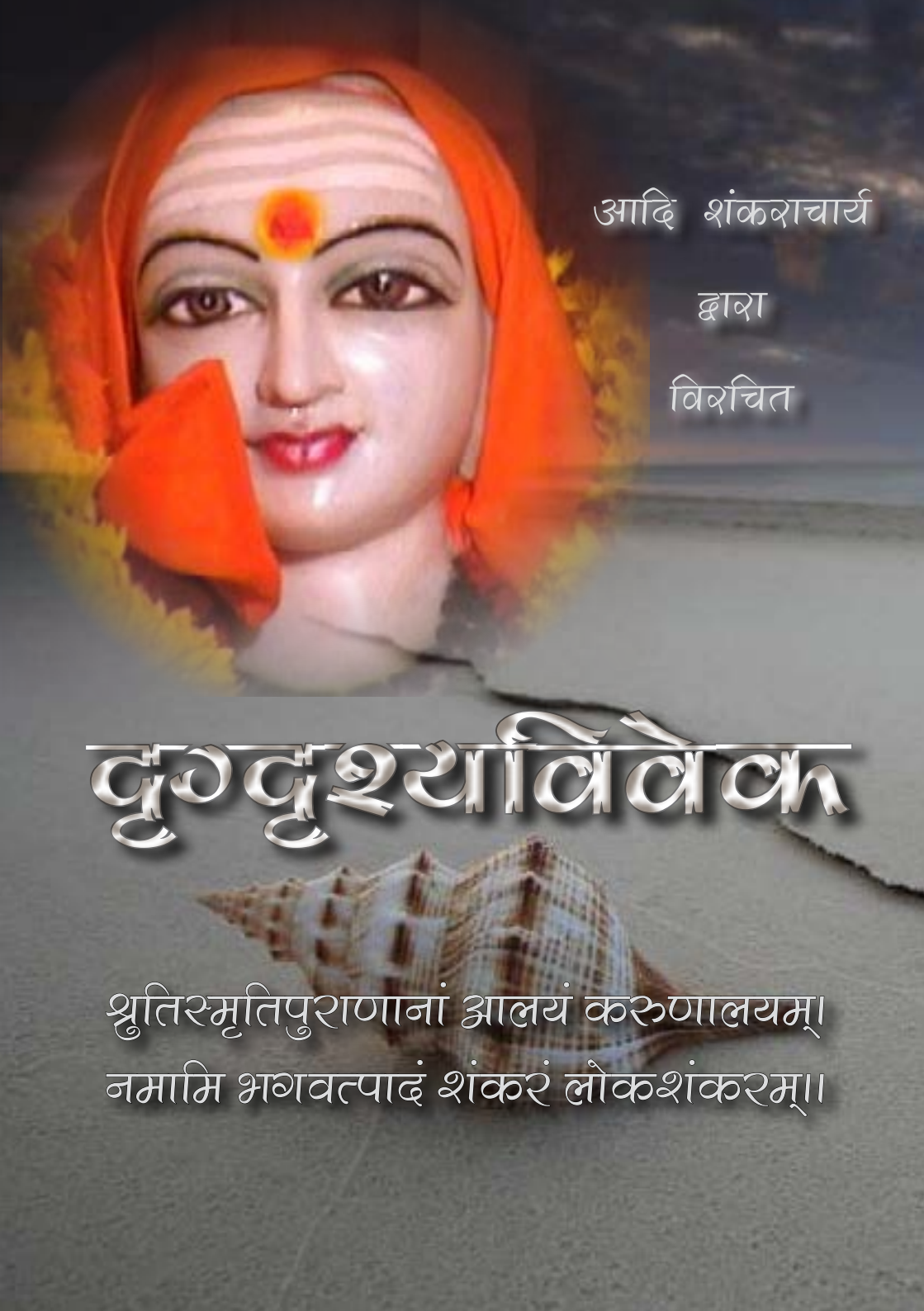
आदि शंकराचार्य
द्वारा
विरचित
दृग्दृश्यविवेक
श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

–श्लोक : २८–

अखण्डैकरसं वस्तु
सच्चिदानन्द लक्षणम्।
इत्यवच्छिन्न चिन्तेयं
समाधिर्मध्यमो भवेत्।।

'अखण्ड, एकरस,
सच्चिदानन्द स्वरूप
वस्तु ही ब्रह्म है' इस
प्रकार का अविच्छिन्न
चिन्तन मध्यम
समाधि है।

दृग्दृश्यविवेक

आचार्य नें २२ वें श्लोक से निदिध्यासन की चर्चा आरम्भ की। इसके अन्तर्गत छ: प्रकार की समाधि बताई। पहले द्रष्टा सम्बन्धी में तीन समाधि के माध्यम से अपना ध्यान अपनी चेतनस्वरूपता की ओर ले जाकर, उन पर शास्त्र प्रतिपादित लक्षणाओं के द्वारा विचार किया। इसका पर्यवसान अपनी अखण्ड, अद्वयस्वरूपता में हुआ। उसके उपरान्त बाह्यदेश में समाधि का अभ्यास बताया गया।

दृग्दृश्य विवेक

बाह्य समाधि में वस्तु और उसमें विद्यमान अस्तित्व रूप पहलू को पृथक् किया जाता है। दृश्य वस्तु में एक नामरूपात्मक

'समस्त नामरूपात्मक जगत नश्वर और परप्रकाश्य होने से मिथ्या है।'

पहलू है और दूसरा उसमें विद्यमान सत्ता। नामरूप से सत्ता को पृथक करके उसके कान्षियस होना दृश्यानुविद्ध समाधि का अभ्यास है। जिस प्रकार किसी एक पदार्थ में अस्तित्व को नामरूप से पृथक् किया, उसी तरह समस्त ब्रह्माण्ड, जो भी दृश्य-नामरूपात्मक जगत है उन सब में नामरूप की विविधता के बावजूद सत्ता समान रूप से एक ही व्याप्त है। इस

दृग्दृश्य विवेक

प्रकार नामरूप की उपेक्षा अर्थात् उसके अस्थायी, परिवर्तनशील, क्षणिकता आदि रूप स्वभाव को देखने पर महत्वविहीन हो जाते हैं। और सब में समान रूप से व्याप्त सत्ता की संज्ञान होती है। यह दीखता है कि नामरूप के होने, उसमें विकार वा परिवर्तन होने पर वा उसके अभाव में भी सत्ता सदैव अविकारी, समान रूप से विराजमान रहती है। यहां तक अभ्यास करने के उपरान्त आचार्य यहां बाह्य धरातल पर मध्यमा अर्थात् शब्दानुविद्ध समाधि बता रहे

दृग्दृश्य विवेक

हैं। जिसमें अन्तःसमाधि की तरह ही विविध शास्त्रप्रदत्त शब्दरूप लक्षणाओं का प्रयोग किया जाता है। जब बाहर एक समान रूप से व्याप्त अस्तित्व का संज्ञान हुआ तो अन्तःसमाधि के द्वारा जिन साक्षी चेतना, अस्मि अर्थात् 'मैं हूं' की तरह निश्चय किया था, वह इनसे भिन्न है, यह कल्पना हो सकती है। अतः कहा कि, 'अखण्ड एकरसं.....।' बाहर और अन्दर का भेद उत्पन्न करनेवाली हमारी उपाधि है। जब उपाधि को भी नामरूपात्मक जगत की तरह जानकर उसे बाधित किया तो अब अन्दर, बाहर का भेद अर्थात् खण्ड भी समाप्त हो गया। अब एक अखण्ड एकरस सत्तामात्र है। यह सत्ता

'लक्षणाएं कोई परिभाषा नहीं होती है।'

दृग्दृश्य विवेक

ही सत्स्वरूप अर्थात् सदैव विराजमान, अबाधित तत्त्व है। इसे जानने वा प्रकाशित करनेवाली चेतना इनसे भिन्न होगी तो अन्योन्य बाधित हो जाएगी। अतः जो सत् स्वरूपता की तरह विराजमान है वही चित् स्वरूप तत्त्व है। यहां समस्त भेद की समाप्ति होने से सच्चिदानन्द स्वरूप हम ही विराजमान है। हमसे अन्यत् किसी का अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार शास्त्रोक्त लक्षणाओं पर विचार करके अपनी अखण्ड, सच्चिदानन्द स्वरूपता में स्थिति होना यह शब्दानुविद्ध, सविकल्प समाधि है।

गीता मननम्

गीता अध्याय : 5

कर्मसंन्यासयोग

कर्मसंन्यास योग

गीता के पांचवे अध्याय का नाम कर्म संन्यास योग है। इस अध्याय में २९ श्लोक है, जिसमें पहला श्लोक अर्जुन के प्रश्न रूप से है, अन्य २८ श्लोक भगवान के कहे गए है।

पूर्व अध्याय में भगवान ने अपने जन्म और कर्म का महत्व बताया। भगवान के कर्म की विशिष्टता कि पूर्णकाम होने से उन्हें कुछ नहीं चाहिए, साथ ही न कर्तापन का अभिमान है। तथापि उनकी अद्भुत और अलौकिक दिव्य

कर्मसंन्यास योग

लीला चलती है। यह प्रचलित मान्यता है कि स्वार्थ और अपेक्षा होने पर ही अच्छी तरह कर्म कर सकते है, किन्तु भगवान की लीला देखने पर यह धारणा टूट जाती है। भगवान के समस्त कर्म समग्रता, उपलब्धता,प्रेम और निस्वार्थता की सुगन्ध से युक्त होते है।

'भगवान के जन्म-कर्म की दिव्यता का हेतु उनका अलौकिक ज्ञान है।'

जो स्वार्थ से प्रेरित होता है, उसका कभी विकास नहीं होता। कर्म के पीछे की दृष्टि से हमें आशीर्वाद भी मिल सकता है अथवा बन्धन मे भी डाल सकता है। इस प्रकार कर्म में अद्भुत सामर्थ्य होता है। यह हमारी दृष्टि पर निर्भर होता है।

कर्मसंन्यास योग

अनेकानेक लोग कर्म में गलत दृष्टि की वजह से जीवन को ही बोजा समझ कर, उससे पलायन करना चाहता है। अर्जुन का वैराग्य भी इसी श्रेणी का था। उन्हें युद्ध करना भी मुसीबत लग रहा था और कर्म न करना भी मुसीबत। वह अनिर्णय की स्थिति में आ गया और वह भयंकर घूटन से युक्त हो गया।

'कर्म एक बहुत सशक्त साधन है, वह हमें बन्धन की ओर भी ले जा सकता है और मुक्ति ओर भी।'

भगवान ने उसे अपना ही दृष्टान्त देकर बताया कि यज्ञभाव से किया हुआ कर्म मन को निर्मल करने का हेतु बनता है। ऐसे शान्त, सूक्ष्म मन से युक्त होकर किसी गुरु के पास जाएं। जहां आग्रह

कर्मसंन्यास योग

अभिमान आदि सब को किनारे करके उनके चरणों में उपलब्ध हो जाते हैं। पूर्ण उपलब्धता होने पर ही ज्ञान का आशीवाद मिल पाएगा। भगवान स्पष्टरूप से बताते हैं कि कर्म से मुक्ति नहीं होती है। किन्तु कर्म में यज्ञभाव के समावेश से ही मुक्ति के ज्ञान के लिए पात्रता उत्पन्न होती है।

'यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।'

एक और अनेकों प्रेरणा की अभिव्यक्तियों को, जिम्मेदारी को अच्छी तरह स्वीकार करते हुए उसे ईश्वर की खुशी के लिए, उनके निमित्त बनकर कार्य करें। यह एक विकल्प है।

कर्मसंन्यास योग

दूसरा विकल्प ज्ञानप्राप्ति के लिए पूर्णतया कर्म की कर्तव्यता से मुक्त अर्थात् संन्यस्त होकर मात्र अपना ज्ञान प्राप्त करने के लिए समर्पित हो। संन्यस्त मन पूर्णतया निश्चिंत, कार्य-अकार्य के बोजे से रहित और ज्ञान के लिए पूर्णरूप से फोकस है। इस प्रकार एक विकल्प यह कि अच्छी तरह समर्पित होकर कार्य करें तो दूसरे में पूर्णरूप से कर्म के बोजे से मुक्त है। ज्ञान के लिए संन्यस्त होना अनिवार्य है।

'कर्म में यज्ञभाव का समावेश करने से मुक्ति के लिए पात्रता होती है।'

अर्जुन के मन में कर्म और संन्यास के सन्दर्भ में संशय था। अतः अर्जुन के प्रश्न से अध्याय का आरम्भ होता है कि दोनों की अनिवार्यता है किन्तु अन्योन्य

कर्मसंन्यास योग

विरोधी होने से हम निर्णय नहीं कर पाते हैं कि हमें क्या करना चाहिए? उसी प्रश्न का उत्तर भगवान इस अध्याय में देते हैं। अध्याय का मुख्य विषय संन्यास के अर्थ का प्रतिपादन है। कर्मक्षेत्र में रहते रहते कर्म से मन को मुक्त कर देना कर्म संन्यासयोग है। भगवान बताते हैं कि, 'संन्यास और कर्मयोग दोनों ही कल्याणकारी है।' संन्यास के विषय में जब अस्पष्टता होती है, तब ही ऐसे प्रश्न की सम्भावना होती है। संन्यास का अर्थ निवृत्तिमात्र नहीं होता है किन्तु मन की एक अवस्था है, जहां

'ज्ञानप्राप्ति हेतु मन पूर्णतया संन्यस्त होना चाहिए।'

कर्मसंन्यास योग

मन रागद्वेष से मुक्त, अन्तर्मुख होकर सूक्ष्मविषय का गहराई से चिन्तन करने में समर्थ होता है। समस्त कर्तव्यता से मुक्त, बाह्य विषयों के प्रति वैराग्य से युक्त है। वह जानता है कि बाहरी उपलब्धियां क्षणिक व नश्वर है। वह तृप्त करने में सक्षम नहीं है। सूक्ष्मता की वजह से ईश्वर के नियन्तृत्व और फलदातृत्वादि सामर्थ को देख पाता है। अतः अपने अन्दर फल के बारे में निश्चिंतता होने के साथ साथ अपने कर्तृत्व के अभिमान से भी मुक्त है। अपनी समस्त धारणाओं, तथा लौकिक अस्मिता पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ है।

'संन्यास का अभिप्राय कर्म करने, न करने के संकल्प से मुक्त हो जाना है।'

कर्मसंन्यास योग

उन सब के पीछे की मूल धारणा और सत्य को समझने की प्रेरणा से युक्त, ज्ञान का इच्छुक है। एवं संन्यास अर्थात् बाहर के कर्म का त्याग ही नहीं, किन्तु उसके पीछे की धारणा को समझने की उत्कण्ठा का नाम है।

'संन्यास में बाह्य विषयों का महत्व समाप्त हो जाता है।'

दूसरी ओर कर्मयोग कि जहां कर्तव्यता से प्रेरित है, किन्तु उसे प्रभु की आज्ञा समझकर, उनके निमित्त बनकर धन्यता से कार्य करने की प्रेरणा विराजमान है। कर्म के पीछे स्वार्थ नहीं किन्तु धर्माचरण, सर्वे भवन्तु सुखिनः की प्रेरणा है। जीवन की हरेक परिस्थिति में समग्रता से ईश्वरार्पण

कर्मसंन्यास योग

बुद्धि से कर्म करता है। कैसी भी विषम परिस्थिति मे कर्मयोगी विक्षिप्त नहीं होते हुए, सदैव समत्व से युक्त रहता है। इस प्रकार पहले कर्मयोग का आश्रय लेना चाहिए, जिससे कि कर्म करते करते उससे संन्यस्त होते जाएं।

'ईश्वर को कर्मफलदाता देखने से फलविषयक निश्चिन्तता हो जाती है।'

हर व्यक्ति की देवता, ऋषि पितृ परिवारादि के लिए कर्तव्यता होती है। संन्यास में सब रोल खतम नहीं किन्तु रोल कम करते है। अन्य सब रोल खतम, मात्र जिनसे ज्ञान लेते है उन गुरु के प्रति हमारा कर्तव्य शेष रहता है। उनकी सेवा, आज्ञा का पालन करना आदि रूप। उनकी

कर्मसंन्यास योग

सन्निधि मोक्षदायी होती है। किन्तु उसके लिए स्वयं की उपलब्धता होनी चाहिए।

'ईश्वर के निमित्त बनकर कर्म करने से कर्मबन्धन से मुक्त होते जाते है।'

अर्जुन सब छोड़कर ऐसा जीवन जीना चाहता था। संन्यासपथ में अन्य सब प्रेरणा, महत्व, सुख-सुरक्षादि की चिन्ता खतम करनी होती है। संन्यास एक न एक दिन अवश्य लेना है किन्तु उसके पहले कर्म का पथ कि जहां उसके पीछे की दृष्टि बदलनी है। जो भी करें भग के निमित्त बनकर करें। यह संन्यस्त होने के लिए पात्रता उत्पन्न करता है। एवं दोनों परं कल्याण के लिए निमित्त बनती है। भगवान बताते हैं कि, 'ज्ञेयः स नित्य संन्यासी..' अर्थात् उसे नित्य संन्यासी

कर्मसंन्यास योग

ही जानना चाहिए जो राग-द्वेष, अपेक्षादि से मुक्त है। वह द्वन्द्वों से अप्रभावित सुखपूर्वक कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति दोनों का महत्व समझता है। क्योंकि दोनों एक ही लक्ष्य के लिए समर्पित है। मन की पात्रता को ध्यान में रखकर ही अपने लिए जो उचित है, उसका आश्रय लेना चाहिए। तब अन्दर से मुक्त, संन्यस्त हो जाते है।

'विविध विषम परिस्थिति में भी विचारशीलता बनी रहना योग है।'

जो योगयुक्त नहीं है, अपने स्वार्थ के लिए, अहं की संतुष्टि की प्रधानता का जीवन जी रहा है, जिसमें ईश्वर के प्रति शरणागति नहीं है, उसके लिए संन्यास अत्यन्त कष्टदायक होता है। जो योगयुक्त

कर्मसंन्यास योग

हो गया, उसका अन्त:करण तथा इन्द्रियां उनके वश में है। वह सब के प्रति आत्मयीता से युक्त है। वह बडप्पन व उदारता से युक्त होकर कर्म करता है, उसे कर्म बांधते नहीं है। वह कर्म के दोषों से मुक्त हो जाता है। कर्मयोगी भगवान का अच्छा निमित्त बनकर जीता है।

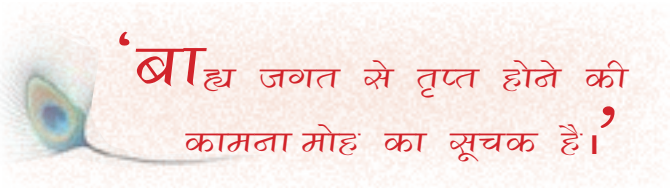

योगी अन्त:प्रेरणा को ईश्वर की आज्ञा समझकर कर्म भी करते है। उपर से अत्यन्त उत्साही होते हुए भी अन्दर से मुक्त व निश्चिंत होता जाता है। उनमें न कर्मफल की चिन्ता और न कर्म की चिन्ता होती है। भगवान को ही अपने हृदय में रखकर, उनकी प्रसन्नता को

कर्मसंन्यास योग

अपनी प्रसन्नता जानकर कर्म करता है, वह कभी भी कर्म से लिप्त नहीं होता है। कमलपुष्प की तरह अलिप्त रहता है। हर कर्म को मन वचन आदि सब कुछ लगाकर समग्रता से भगवान की खुशी के लिए करना यह चुनौति है। यही कर्मयोगी का लक्ष्य होता है। जब ऐसा पात्र बन जाता है तब ज्ञान के लिए प्रेरित हो।

'अध्यात्म के जिज्ञासु का कर्तव्य मात्र अपने गुरु के प्रति होता है।'

भगवान ने न कर्तृत्व का निर्माण किया है और नहीं कर्म का। किन्तु जीव अज्ञान की वजह से छोटेपन और असुरक्षा से प्रेरित ही अपने उपर कर्तृत्व और कर्म का आरोपण करता है। भगवान कहते हैं कि हमने कर्म ही नहीं बनाया हैं, इसलिए

कर्मसंन्यास योग

कर्मफल भी हमारा नहीं है। तुम अपने कर्म हमारे प्रति अर्पित करों किन्तु हम किसी के पाप या पुण्य नहीं लेते है। किन्तु अज्ञान व मोह के वशीभूत जीव यही मानता है।

'रागद्वेष व अपेक्षाओं से मुक्त होना, संन्यस्तता की दिशा में यात्रा है।'

ज्ञान से कर्म, कर्तादि के रहस्य ज्ञात होने पर अपने उपर से समस्त अध्यारोपों को निषेध हो जाता है। सूर्यप्रकाश से अन्धकार की निवृत्ति की तरह ज्ञान के प्रकाश से सब अज्ञान का आवरण नष्ट हो जाता है। पूर्ण कृतार्थ, आनन्द व संतुष्टि से युक्त होते है। यही जीवन का लक्ष्य है। इस लक्ष्य के लिए ही पात्रता जगाना है। उसके लिए प्रेरित होकर कर्म करें।

कर्मसंन्यास योग

अन्यथा स्वकेन्द्रिता से युक्त, सदैव अभिमान व अहं की संतुष्टि से प्रेरित कर्म कभी भी मुक्त नहीं करता। कर्मयोगी संकुचिता, आसक्ति से मुक्त होता है। ईश्वर भक्ति से प्रेरित ही कर्मयोगी होकर संन्यास की ओर यात्रा करता है। इस प्रकार पहले कर्मयोगी बनते

> 'योगयुक्त का जीवन अहं की संतुष्टि और स्वार्थरहित होता है।'

हैं। तब ही अपने अन्दर कर्म और कर्मफल से मुक्त संन्यस्त होकर गहराई से चिन्तन कर पाते है। उन्हें हृदय मे रखकर कार्य करते है, उसका ज्ञान प्राप्त

कर्मसंन्यास योग

करते हैं वे अपुनरावृत्तिं गच्छन्ति। अर्थात् जीवभाव से मुक्त होकर संसारचक्र से मुक्त हो जाते हैं। अतः कर्मक्षेत्र से ही आरम्भ करें। तब ही निर्मलता से युक्त होकर ज्ञान के लिए पात्र बनते हैं।

'योगयुक्त जितेन्द्रिय होता है।'

इस प्रकार जो ज्ञान से युक्त हो जाता है, वह ज्ञानवान इस विविधतापूर्ण जगत में, सात्विक, राजसी वा तामसी–उन सब में एक चिन्मयी सत्ता को देखते हैं। औपाधिक गुण और धर्म के भेद को देखते हुए भी उन सब में एक ही दिव्य सत्ता को व्याप्त देखता हैं। जब इस श्रद्धा से युक्त ऐसी दृष्टि रखकर जीते हैं तो समत्व, अपनापन और निश्चिंतता से युक्त होते जाएंगे। यदि आग्रहादि बने रहेंगे तो चिन्ता,

कर्मसंन्यास योग

तनाव, अशान्ति होना नियति है। उस बजह से मन कामादि विकारों से युक्त होता है। रागादि उसीकी अभिव्यक्तियां है। अतः कामक्रोध से मुक्त होकर मन में समत्व स्थापित हो। संस्कार के वशीभूत होकर प्रवाहित होना अज्ञान और मोह क लक्षण है। अतः कर्मक्षेत्र में रहते हुए भी विविध विषम परिस्थितियों में हर्षित शोकाकुल होकर विक्षिप्त न हो। सतत विचारशीलता व सजगता बनी रहें। ऐसे समत्व से युक्त होने पर अन्तर्यात्रा होगी।

'समग्रता से कर्म करना कल्याणकारी है।'

जैसे जैसे बाहर से मुक्त होते जाते है, वैसे वैसे अक्षय सुख की दिशा में यात्रा होती है। अशान्ति, तनावादि से मुक्त होते जाते है। स्वकेन्द्रिता से युक्त बाह्य विषय

कर्मसंन्यास योग

को ही अपने सुख का हेतु समझना यह पराधीनता का हेतु व दुःख की योनि है। उससे कभी सुखी नहीं। अतः बाहर से मुक्त हो जाए, तब ही अन्दर से सुख मिलेगा। जिसने भी यहीं रहते हुए अपने काम-क्रोधादि अनेकों इच्छादि के वेग पर नियन्त्रण पा लिया, वह योगी सुख हो जाएगा। यह कर्मयोगी ही संन्यासी, ज्ञान का पात्र बनता है।

'अज्ञानी जीव स्वयं को कर्ता भोक्ता जीव मानकर जीता है।'

वे कामक्रोधादि से मुक्त होकर ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार बाहर सब से मुक्त होकर ध्यान करके उसे आत्मसात करें। इस तरह कर्मयोगी से मन निर्मल हो जाता है वही संन्यस्त होकर तत्वज्ञान प्राप्यते।

कर्मसंन्यास योग

'ईश्वर के प्रति श्रद्धा और भक्ति ही कर्मयोग के प्राण है।'

अन्त में भगवान ज्ञान में निष्ठा के लिए अन्तरंग साधन रूप ध्यान की भूमिका बनाते हुए इस कर्म संन्यास के उपदेश का समापन करते हैं। यह ही पांचवें अध्याय का सार है।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

—११—

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

श्री लक्ष्मण चरित्र

धनुषयज्ञ में पधारने का निमंत्रण मिलने पर महर्षि राघव से 'सीय स्वयंवर देखिय जाई' का अनुरोध करते हैं। उन्हें लगता है पता नहीं भगवान शिव किसे धनुर्यज्ञ का श्रेय देना चाहते हैं। पर लक्ष्मण ब्रह्मा या शिव पर निर्णय का भार छोड़ने के लिए प्रस्तुत नहीं है। न उनके मन में कोई अन्तर्द्वन्द्व है और न संशय। उनके लिए अपने प्रभु का अन्तःकरण ही सब से बड़ा प्रमाण है। उनकी दृष्टि में धनुष टूटना अवश्यम्भावी है, और यह कार्य

श्री लक्ष्मण चरित्र

प्रभु के द्वारा ही सम्पन्न होगा, इसमें उन्हें कोई भ्रम नहीं है। इसलिए राघव के द्वारा सूर्योदय के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट किए जाने पर अरुणोदय के बहाने धनुर्भंग का ही रूपक प्रस्तुत करते हैं। महर्षि के द्वारा जब यह कहा जाता है कि, देखे! भगवान् शिव किसे धनुर्भंग का श्रेय देना चाहते हैं?' उस पर वे तत्काल बोल पड़ते हैं कि यश का भाजन तो वही होगा जिस पर आपकी कृपा होगी।

धनुषयज्ञ में लक्ष्मण का तेजस्वी और मुखर रूप सामने आता है। यद्यपि वे वहां प्रारम्भ में पूरह तरह उदासीन और मौन दिखाई देते हैं। जनक के बन्दीजनों के द्वारा की जानेवाली घोषणा पर उनमें किसी प्रतिक्रिया का उदय नहीं होता। राजाओं के द्वारा किए गए प्रयासों को वे

श्री लक्ष्मण चरित्र

तिरस्कार और उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। फिर भी नाट्यमंच पर स्तुतिकरण की कला में निपुण आचार्य की भांति इसे भी आवश्यक मानते हैं, क्योंकि वे भलीभांति जानते थे कि समस्त राजाओं के पराजित होने के बाद प्रभु के द्वारा धनुर्भंग होने पर ही उपस्थित जनसमूह राघव के गौरव की गरिमा हृदयंगम कर सकेगा। किन्तु राजाओं की असफलता के बाद जनक की निराशाभरी वाणी से वे विक्षुब्ध हो उठें। क्योंकि महाराज जनके के स्वर में उन्हें घोर अनौचित्य का अनुभव हो रहा था। जनक ने आक्रोश-भरे स्वर में राजाओं की पौरुषहीनता की निन्दा करते हुए कहा था कि 'यदि मुझे यह ज्ञात होता कि पृथ्वी वीरों से शून्य हो चूकी है तो प्रतिज्ञा के द्वारा मैं उपहास का पात्र न बनता।' इतना ही नहीं वे राजाओं से तिरस्कारपूर्वक चले जाने के लिए कहते हैं। धनुष न तोड़ पाने के बाद भी राजा

श्री लक्ष्मण चरित्र

लिए कहते हैं। धनुष न तोड़ पाने के बाद भी राजा अपने स्थानों पर बैठे हुए थे। जनक को लगा कि इन पराजित राजाओं के मन में अब भी आशा की किरण विद्यमान है, सोचते होंगे कि किसी के द्वारा धनुष न टूट पाने पर जनक अपनी कन्या का विवाह किसी न किसी से तो करेंगे ही। उनकी इस दुराशा पर प्रहार करते हुए महाराज ने स्पष्ट कर दिया कि यद्यपि कन्या का कौमार्य अत्यन्त दुःखदाई है, पर वे किसी भी स्थिति में सत्य का परित्याग नहीं करेंगे। इस तरह उनकी वाणी में निराशा, आक्रोश और अनादर का स्वर विद्यमान था। महाराज जनक की वाण सक लक्ष्मण का विक्षुब्ध होना स्वाभाविक ही था। लक्ष्मणजी को उनकी वाणी में रघुवंश परम्परा का अनादर दीखाई दिया। वे उसे सहन नहीं कर सकें।

विभूति दर्शन

जीवनमुक्त

—१५—

ऋषीकेश

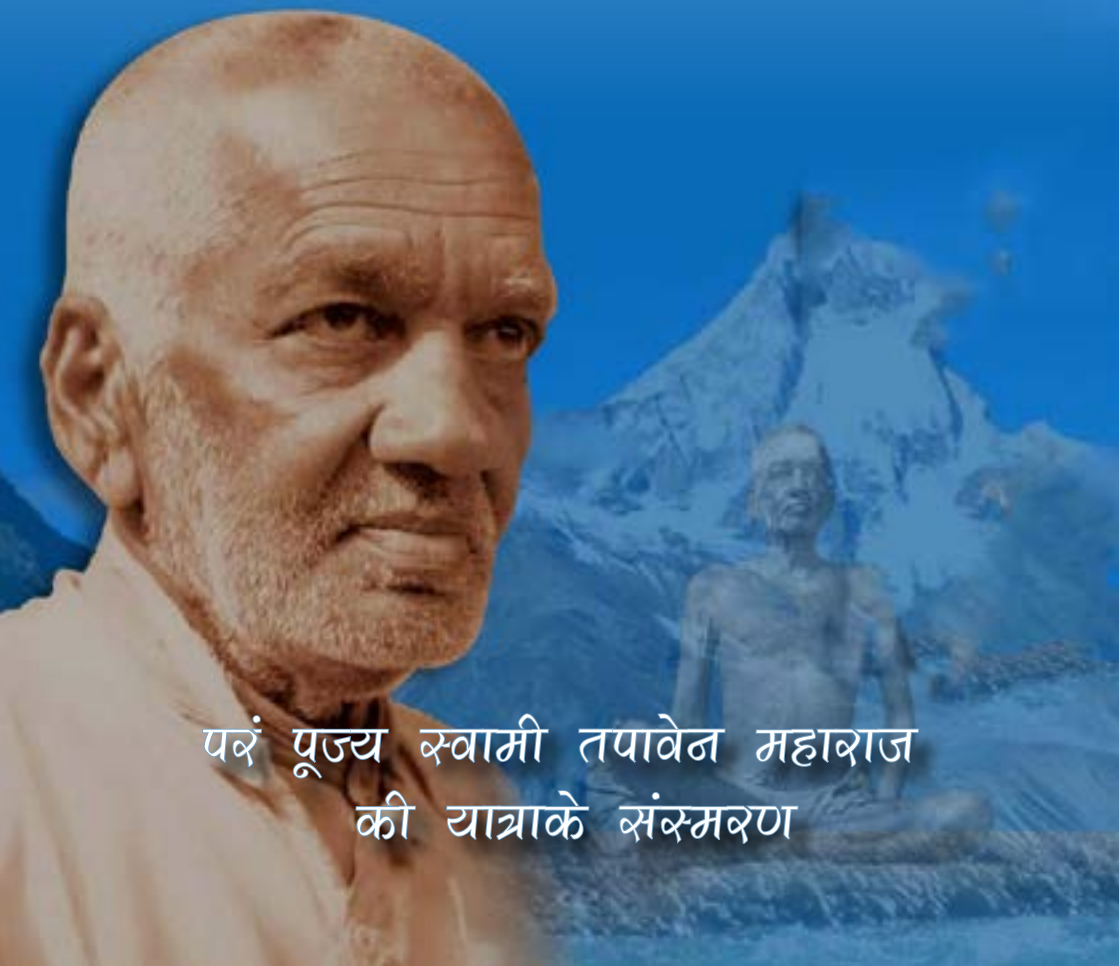

परं पूज्य स्वामी तपावेन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवनमुक्त

हृषीकेश से मैं ज्यादातर उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान किया करता था। हृषीकेश से सौम्यकाशी की ओर के उस अति घने और अधिक रमणीय हिमालय मार्ग को देखकर यदि पाठक खुश होना चाहते हैं तो लीजिएं, उधर की ओर प्रस्थान करके मेरे पीछे पीछे चलते आइयें। बम्बई, पैरिस, लंदन आदि नगरों की प्रासाद पंक्तियों से परिवेष्टित, बहुत से आडम्बरों से संकुल, कलरवों से मुखरित और वैद्युत

जीवन्मुक्त

दीपमालाओं से देदीप्यमान राजमार्गों में भी जो सुख नहीं मिलता, वह सुख इन हिमगिरि सरणियों में मिलता है। इन पर चलने के लिए सभी पाठक उन्मेष के साथ मेरे पीछे आएंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

हृषीकेश सौम्यकाशी की ओर मुख्यतः तीन मार्ग हैं। उनमें सबसे सरल तथा मेरे लिए सबसे अधिक परिचित मार्ग से हम यात्रा करेंगे। हृषीकेश भूमि से पश्चिमोत्तरी दिशा में जानेवाले रास्ते से कुछ उपर की ओर चढते जाएँ तो झिल्ली झंकारनाद से निनादित गम्भीर वन का आरम्भ होता है। वनान्तर में प्रविष्ट होकर एक दो मील समतल भूमि पर चलने के बाद फिर उँचे पहाड आ जाते हैं। और इसलिए चढाई भी शुरू हो जाती है। पर पहाडों के पार्श्वभाग भी वनों से आच्छादित बने

जीवन्मुक्त

रहते हैं। विभिन्न भाँति की विटपियों, वल्लियों और गुल्मों से भरी पूरी निबिड वनराजि का सौंदर्य व गांभीर्य न्यूनाधिक भाव के बिना पर्वत के शिखर तक एक रूपसे विराजमान है।

अहो, कितना रमणीय वन है! कृत्रिम सुन्दरता तो क्षणिक होती है, पर अकृत्रिम सुन्दरता अगर होती है, वह मानवकर या मानवबुद्धि से बिलकुल असम्बद्ध, ईश्वर के ही हाथों निर्मित सौंदर्य संपत्ति ऐसे वनान्तरों को छोड और कहीं संपूर्ण रूप से प्रकट नही होती। सौंदर्यानुभूति का आनंद ही नही, बल्कि बहुमुखी

जीवन्मुक्त

ईश्वरीय लीलाओं के प्रत्यक्ष वीक्षण का एक असाधारण सुख भी यहां भरा रहता है। सब प्रकार के लोकव्यवहार यहां चित्रित से दिखायी देते हैं। समाचार पत्रों को पढ़े बिना ही यहां खड़े होकर चारों ओर देखनेवाले एक बुद्धिमान् की बुद्धि से संसार के सभी समाचार समा जाते हैं।

लीजिएं! मर्कट-यूथ का नेता अनेक मर्कट युवतियों के साथ विहार कर रहा है कि इतने में एक दूसरा बड़ा सा बंदर इन मर्कटियों के पास पहुच जाता है, और इनका प्रियतम उसके साथ महासंग्राम करके वनान्तर को थर थर कंपा देता है। देखिएं! दूसरी ओर एक और समूह किसी खाद्य वस्तु के लिए जर्मनयुद्ध को भी पीछे करते हुए भयानक लड़ाई में लगा है। आपस में दाँत दिखाते, साहस के साथ लड़ते,

जीवन्मुक्त

कुछ डरकर भागते और कुछ उनके पीछे दौड़ते कोलाहल मचा रहे हैं। अहो! कामिनी और कॉचन सब कहीं कलह के ही कारण हैं। ये रक्तमुख मर्कट बड़े धूर्त होते हैं। लीजिएं, इन कृष्णमुखों के समूह का निरीक्षण कीजिएं। वे बड़े भक्त तथा शान्त होते हैं। दूर उंचे वृक्षों की शाखाओं पर झगड़ा अथवा अधिक चपलता किये बिना वे ईश्वरचिन्तकों के समान चुपचाप बैठे हैं।

पौराणिक गाथा

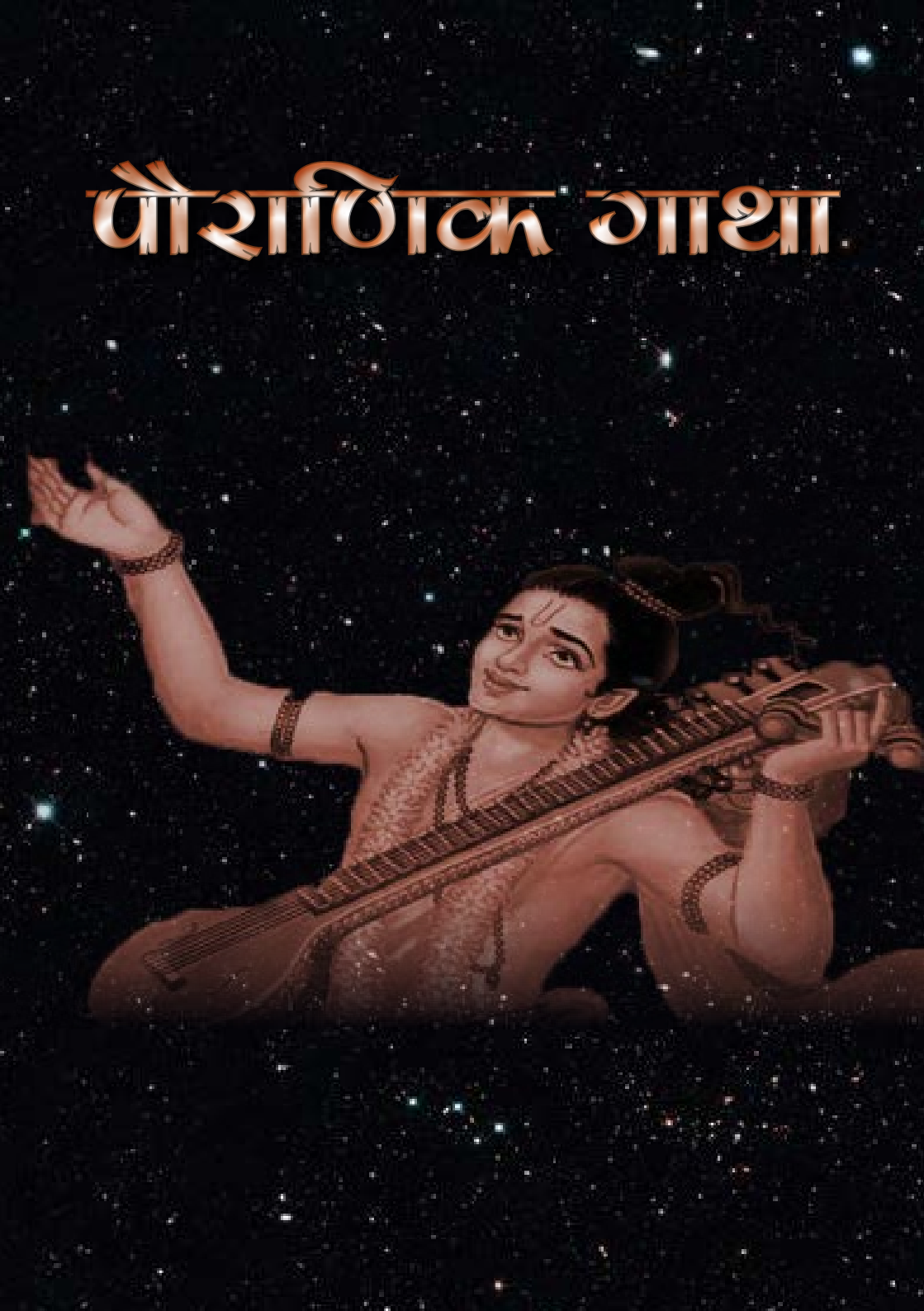

श्रद्धावाल्लभते ज्ञानम्

भगवान ने गीता में बताया कि श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्। बगैर श्रद्धा के किसी लौकिक विषय का भी ज्ञान सम्भव नहीं होता है; फिर अध्यात्मज्ञान तो असम्भाव ही है। जहां गुरु के प्रति श्रद्धा और भक्ति होते हैं, वहीं ज्ञान का सुन्दर संवाद स्थापित होता है। प्रश्नोपनिषद् का आरम्भ इसी विषय पर आधारित होता है।

श्रद्धावाल्लभते ज्ञानम्

सत्यकाम, शिवि, भार्गवादि पांच ऋषि कुमार थे। वे सब बहुत विद्वान्, तपस्वी, अपने अपने कर्म में दक्ष तथा धर्माचारी थे। वे सत्य की जिज्ञासा से युक्त किसी ज्ञानवान की खोज में नीकले। खोज करते करते वे ऋषि पिप्पलाद के आश्रम में पहुंचे। उन्होंने यह सुना था कि वे ज्ञानवान, ब्रह्मनिष्ठ हैं। वे हमारे प्रश्नों का अवश्य समाधान करेंगे। इस अपेक्षा से युक्त होकर उनके प्रति शरणागत हुएं और उनसे कहा कि 'भगवन्! हम सब सत्य के जिज्ञासु है। हमारे अन्दर कुछ संशय विद्यमान है। कृपया आप हमें ज्ञान से अनुगृहीत करके, उसका समाधान करें।

"श्रद्धावाल्लभते ज्ञानम्"

श्रद्धावाल्लभते ज्ञानम्

ऋषि ने कहा कि, 'तुम लोग कुछ वर्षों तक आश्रम में तपस्या के साथ रह कर सेवा करों। यदि हम तुम्हारी सेवा से प्रसन्न होंगे तो तुम्हें प्रश्न पूछने की अनुमति देंगे। किन्तु तुम्हारे प्रश्न पूछने पर भी यह निश्चित नहीं है कि तुम्हें उसका जवाब मिलेगा ही। यदि हम उस विषय में जानते होंगे तो तुम्हें बताएंगे। अन्यथा तुम सब किसी ओर गुरु की तलाश में जा सकते हो। यदि यह शर्त स्वीकार्य है तो स्वागत है।'

यह सौदा काफी महंगा था, क्योंकि मन में ज्ञान की पीपासा से युक्त रहते हुए भी जीवन के कुछ वर्ष सेवादि में गंवाने पडेंगे। यदि पिप्पलाद ऋषि ने इन्कार कर दिया कि हमारे पास तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर नहीं है तो

श्रद्धावाल्लभते ज्ञानम्

इतने वर्ष की तपस्या, सेवादि साधना व्यर्थ जाएगी। तथापि पांचों जिज्ञासु की विनम्रता से वहां रुक गएं। विविध क्षेत्र में आश्रम में सेवा प्रदान करने लगे। कुछ ही समय में ऋषि उनके सेवा, समर्पण से प्रसन्न हुएं और उन्हें प्रश्न पूछने की अनुमति प्रदान की। अपने अपने प्रश्नों का समाधान पाकर वे सब संतुष्ट हो गए।

अटूट श्रद्धा, समर्पणभाव और से युक्त थे। सेवा के माध्यम से ही हमारी गुरु के प्रति श्रद्धा और समर्पण की अभिव्यक्ति होती है। जो अज्ञान की विनम्रता व ज्ञान की तीव्र जिज्ञासा से युक्त होता है, वह ही समर्पित हो पाता है और ज्ञान से लाभान्वित होता है।

विभूति दर्शन

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम समाचार

आश्रम परिवार सत्संग

२४ मई
२०२१

जन्म और
मृत्यु

आश्रम समाचार

आश्रम परिवार सत्संग

जन्म और मृत्यु

आश्रम समाचार

२४ मई
२०२१

जन्म और
मृत्यु

आश्रम परिवार सत्संग

आश्रम समाचार

आश्रम परिवार सत्संग

१३ मई
२०२१

बाल विहार

क्राफ्ट क्लास

आश्रम समाचार

बाल विहार

१७ मई

आश्रम समाचार

बाल विहार

क्राफ्ट क्लास

आश्रम समाचार

दया का जन्मदिन

२६ जून २०२१

आश्रम समाचार

26th Jun 2021

पू. गुरुजी का कृपापात्र

सब का स्नेहपात्र

आश्रम समाचार

४ थी
वर्षगांठ

जन्मदिन
भण्डारा

26th Jun 2021

आश्रम समाचार

बच्चों का चहिता

आश्रम समाचार

Games & Dance

Joyous Evening

आश्रम समाचार

सिरपुर तालाब, इन्दौर

आश्रम समाचार

सिरपुर तालाब,
इन्दौर

मनमोहक
दृश्य

Internet News

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

- ~ Monthly Satsang Videos
- ~ Prerak Kahaniya
- ~ Eksloki Pravachan
- ~ Sampoorna Gita Pravachan
- ~ Kathopanishad Pravachan
- ~ Shiva Mahimna Pravachan
- ~ Bhaja Govindam
- ~ Hanuman Chalisa

Audio Pravachans

- ~ Prerak Kahaniya
- ~ Sampoorna Gita Pravachan
- ~ Eksloki Pravachan
- ~ Eksloki Chanting

Vedanta Ashram YouTube Channel

Monthly eZines

Vedanta Sandesh ~ July '21

Vedanta Piyush ~ June '21

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

२४ जुलाई २०२१ . सायं ७.०० बजे

ओनलाईन मासिक सत्संग

प्रार्थना एवं प्रवचन

आश्रम परिवार के सदस्यों के लिए विशेष

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

---

२४ जुलाई २०२१ . सायं ७.०० बजे

गुरुपूर्णिमा उत्सव

केवल आश्रम के अन्तेवासियों के लिए

ओनलाईन प्रसारण किया जाएगा

प्रतिदिन प्रातः ७.०० बजे

(मंगलवार से शनिवार)

मुण्डकोपनिषद् प्रवचन (शांकर भाष्य)

आश्रम के संन्यासियों के लिए

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

Visit us online :
Vedanta Mission

Check out earlier issues of :
Vedanta Piyush

Visit the IVM Blog at :
Vedanta Mission Blog

Published by:
International Vedanta Mission

Editor:
Swamini Amitananda Saraswati